

भूमि सुधार (LAND REFORM)

भूमि सुधार

भूमि सुधार एक विस्तृत धारणा है जिसमें सामाजिक न्याय की दृष्टि से जोतों के स्वामित्व का पुनःवितरण, भूमि के इष्टतम प्रयोग तथा सहकारी कृषि को बढ़ावा देने की दृष्टि से खेती किए जाने वाले जोतों का पुनर्गठन सम्मिलित है। भूमि सुधार में भूमि जोतो पर सीमा, चकबन्दी, सहकारी कृषि, भूमिहीनो को अतिरिक्त भूमि का वितरण, काश्तकारी सुधार आदि कार्यक्रम सम्मिलित होते हैं। भूमि सुधार करने से उत्पादन बढ़ता है और उसके साथ-साथ ग्रामीणों को न्याय मिलता है। भूमि-सुधार के अंतर्गत कृषि कार्य के ढाँचे एवं संगठन में आवश्यक परिवर्तन करना होता है।

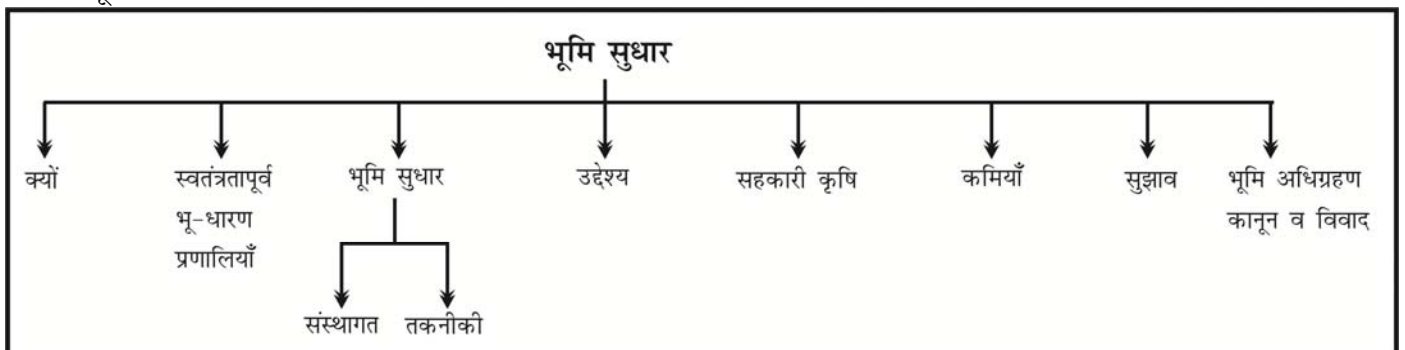
भूमि सुधार = जोतों के स्वामित्व का पुनःवितरण + जोतो का पुनर्गठन + सहकारी कृषि को बढ़ावा

भूमि सभी आर्थिक गतिविधियों का आधार है। भारत में भूमि समस्याओं ने नीति-निर्माताओं और शिक्षाशास्त्रियों दोनों का ही ध्यान अपनी ओर खींचा है। भारत में नीति से संबंधित प्रयास विभिन्न चरणों से होकर गुजरे हैं। उनमें सरकार के विभिन्न हस्तक्षेपों के कारण विकास के प्रति समग्र दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन आया है। भारत की स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में राष्ट्र निर्माण के लिए जो सोची-समझी प्रक्रिया अपनाई गई उसमें भूमि की समस्या को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। निर्धनता उपशमन के राष्ट्रीय उद्देश्य में उच्च उत्पादकता और समान वितरण पर विशेष बल दिया गया है। तदनुसार भूमि सुधारों को सृढ़ और समृद्ध राष्ट्र के महत्वपूर्ण आधार के रूप में देखा गया। स्वतंत्रता के तुरंत बाद भूमि सुधार के महत्वपूर्ण घटकों को भूमि संबंधी नीति-निर्माण के महत्वपूर्ण नीतिगत हस्तक्षेप के रूप में सोचा गया, इनमें बिचौलियों की समाप्ति, बटाईदारी प्रथा में सुधार, भूमि हदबंदी और चकबंदी शामिल है। प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही भू-नीति हमारी योजनाओं का महत्वपूर्ण घटक रही है।

भूमि सुधारों में स्त्री-पुरुष समानता कार्यक्षमता और सशक्तीकरण के आधार के रूप में देखा जाता है। जिस के रूप में भूमि की अवधारणा साझी संपत्ति की पारंपरिक अवधारणा के विरुद्ध है, जैसा कि जनजातीय समाजों में देखा गया है। विकास और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में इन समुदायों को भूमि अधिकारों से वंचित होना पड़ता है और उन्हें व्यापक विस्थापन का सामना करना पड़ता है। अतः यह महत्वपूर्ण है कि जनजातीय समुदायों का जो विशिष्ट अस्तित्व है उसे स्वीकार किया जाए विशेषकर देश के विभिन्न भागों में अपनी देशज पहचान के लिए हो रहे संघर्ष के संदर्भ में।

भूमि और कृषि प्रशासन सरकार की पृथक शाखाएं हैं। इस दृष्टिकोण के कारण निर्णय लेने की प्रक्रिया कठिन हो जाती है। भू-नीति का क्रियान्वयन सरकार की प्रमुख समस्याओं में से एक है। ग्रामीण विकास मंत्रालय का भूमि संसाधन विभाग भूमि प्रशासन संबंधी मुद्दों को देखता है और भूमि सुधारों के कार्यान्वयन पर परामर्श देने और समन्वय का काम करता है। हाल के वर्षों में सरकार की प्राथमिकता भूमि प्रबंधन को आधुनिक रूप देने पर रहा है। भू-अभिलेखों के कम्प्यूटरीकरण और डिजिटलीकरण के जरिये भूमि संबंधी लेखा-जोखा को अद्यतन बनाना, भूमि अधिकारों का सही-सही हिसाब रखना, बटाईदारी, कृषि और ग्रामीण असंतोष के कारणों का विश्लेषण, जनजातीय भूमि का पृथक्करण और सट्टेबाजी तथा गैर-कृषि कार्यों के लिए कृषि भूमि के क्रय-विक्रय पर रोक के उपायों के जरिये बेहतर भूमि प्रबंधन के प्रयास किए जा रहे हैं।

हाल ही में संसद द्वारा पास किया गया भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास और पुनर्स्थापना विधेयक सौ साल से अधिक पुराने कानून में आमूल परिवर्तन कर वर्तमान प्रणाली में कमियों को दूर करने का एक और प्रयास है। विधेयक का कुछ विरोध के बावजूद सभी ओर से स्वागत किया गया है।



भारत में भूमि सुधारों की आवश्यकता

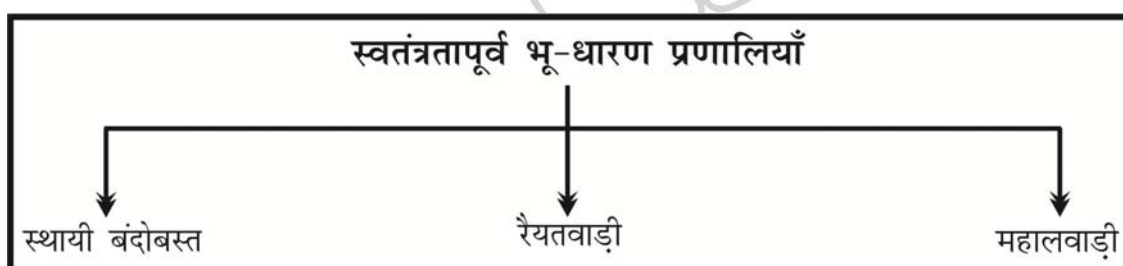
- भारत में भूमि सुधार की आवश्यकता किसानों की उन माँगों में निहित है जिनके तहत वे भूमि पर स्वामित्व एवं काश्तकारी अधिकार प्राप्त करने के साथ-साथ लगान का तर्क संगत तरीके से पुनर्गठन अथवा उसमें कमी चाहते थे। भूमि सुधार समान्य रूप से भूमिहीनों, काश्तकारों और छोटे किसानों के लाभ के लिए भूमि के पुनर्वितरण की सरकारी नीति को दर्शाता है। इसका लक्ष्य सम्पत्ति में विस्तार के साथ आय एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना है।
- इसके अतिरिक्त भूमि सुधार नीति के आर्थिक समाजिक और राजनीतिक आयाम भी हैं। भूमि सुधार के आर्थिक आयाम में एक छोटे समूह द्वारा भूमि का स्वामित्व धारण करना सम्मिलित है।
- इस समूह के सदस्य वास्तव में कृषि तो नहीं करते थे। परन्तु वास्तविक खेतिहरों यथा काश्तकार और कृषि श्रमिकों का शोषण करते थे। दूसरी ओर प्रतिफलों या लाभों के अपर्याप्त होने के कारण एवं अधिशेष की अनुपलब्धता के कारण काश्तकार भूमि संबंधी सुधार नहीं कर सके।
- जहाँ तक समाजिक आयामों का संबंध है। भूमि अधिकार पारंपरिक रूप से उच्च जातियों के पास ही थे, निम्न जातियाँ अधिकांशतः काश्तकार या कृषि श्रमिक थे।

भूमि सुधारों के उद्देश्य एवं महत्व

भूमि सुधार के उद्देश्य-

1. पुराने भूमि संबंधों की समाप्ति।
2. काश्तकारों को भू-स्वामित्व प्रदान करना।
3. भूमि व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले सभी प्रकार के शोषण व सामाजिक अन्याय को समाप्त करना।
4. मध्यस्थों/ बिचौलियों की समाप्ति।
5. किसानों के अधिकारों को सुनिश्चित करना।
6. सामाजिक एवं आर्थिक न्याय को सुनिश्चित करना।
7. कृषि उत्पादकता को बढ़ाने का प्रयास करना।
8. काश्तकारों के द्वारा भू-स्वामियों को दिए जाने वाले लगान को नियमित करना।
9. ग्रामीण गरीबी एवं असमानता को दूर करना।
10. भूमि का पुनर्गठन कर एक नई संरचना बनाना- चकबंदी के द्वारा खेतों को एक जगह इकट्ठा करना एवं हदबंदी द्वारा भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करना।

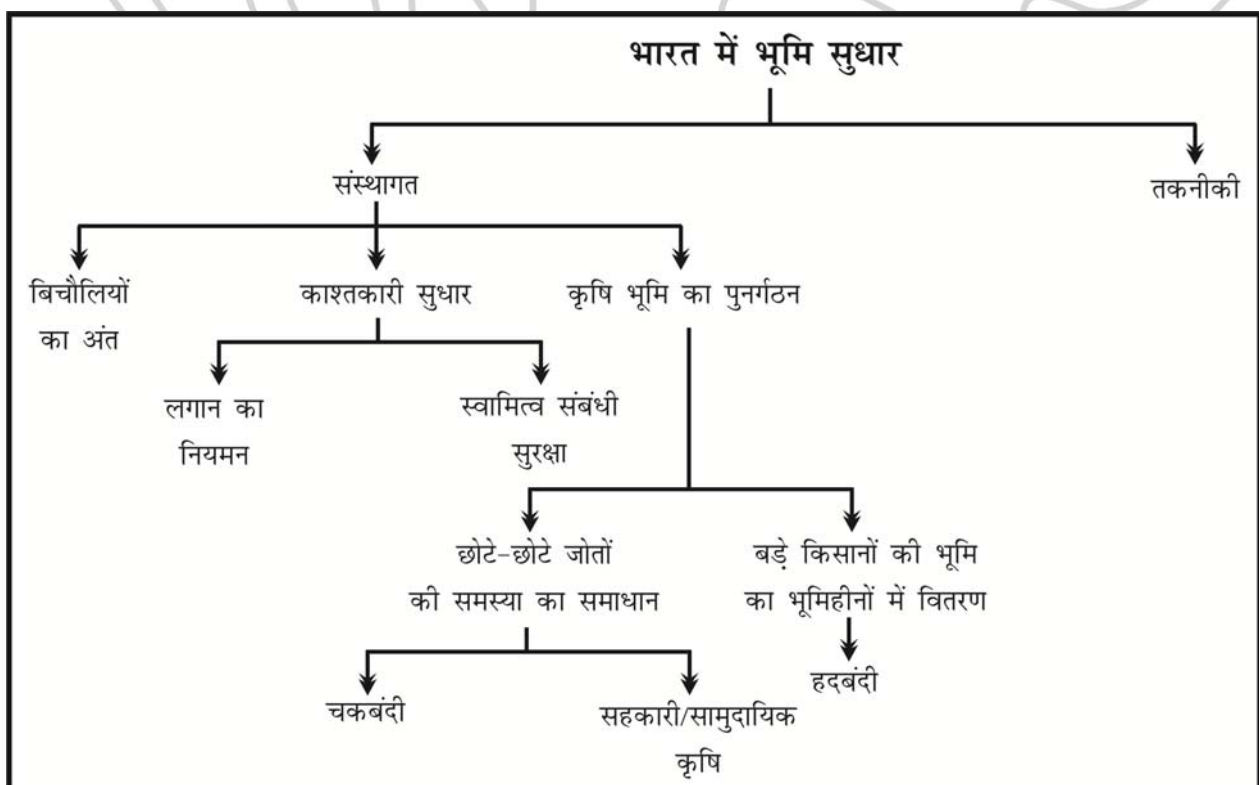
स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में भू-धारण प्रणालियाँ



इसके पहले कि हम भूमि सुधार सम्बन्धी कदमों की समीक्षा करें तथा वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालें पहले हम ब्रिटिश काल में भूमि सम्बन्धी ढाँचा से अवगत होना अधिक उचित समझते हैं। ब्रिटिश काल में जमीन के बन्दोबस्त के सम्बन्ध में तीन प्रणालियाँ प्रचलित थीं-

- (क) **जमींदारी प्रथा**- इसे स्थायी या इस्तमरारी व्यवस्था भी कहते हैं। इसमें 1790 में कार्नवालिस द्वारा एक 10 वर्षीय भू-राजस्व व्यवस्था लागू की गयी। जिसे 1793 में स्थायी कर दिया गया। इस व्यवस्था में भूमि का स्वामी तथा लगान वसूली का अधिकारी जमींदार को ही माना गया। राजस्व वसूली के लिए जमींदार को राजस्व का 1/11वां भाग रखने की अनुमति थी और 10/11 भाग साम्राज्य को दिया जाना नियत किया गया। इस व्यवस्था की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि जमींदार कितना लगान वसूले यह स्पष्ट नहीं किया गया जिससे लगान में वृद्धि का फायदा जमींदारों को मिला किन्तु सरकार को नहीं। यह बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बनारस व उत्तरी कर्नाटक के क्षेत्रों में लागू की गई। स्थायी होने के कारण कृषि की प्रतिकूल या अनुकूल पैदावार होने के बावजूद इसकी लगान दर में परिवर्तन नहीं किया जा सकता था जिससे सरकार व किसान दोनों को हानि हुई।
- (ख) **रैयतवाड़ी प्रणाली**- इस व्यवस्था में प्रत्येक पंजीकृत भूमिदार भूमि का स्वामी माना गया। राजस्व जमा करने का उत्तरदायित्व भी किसानों का था। यदि किसान सरकार को निर्धारित लगान नहीं पहुँचा पाते थे तो उसे भू-स्वामित्व के अधिकार से वंचित कर दिया जाता था। सर्वप्रथम इस व्यवस्था को 1792 में बारामहल जिले में रीड ने 10 वर्षों के लिए लागू किया। यह 30 वर्षों के लिए लागू किया गया और लगान दर 1/3 निश्चित की गई। प्रारंभ में इसमें उपज व उत्पादन के आधार पर लगान दर को बदला जा सकता था अतः 1855 में भूमि की उर्वरा शक्ति तथा पैदावार के आधार पर लगान निर्धारित किया गया।
- (ग) **महालवाड़ी प्रणाली**- इस व्यवस्था में गाँव की भूमि सम्मिलित ग्राम सभा की मानी जाती थी अर्थात् भूमि पर गाँव का सामुदायिक अधिकार माना गया। महालवाड़ी में गाँव के सदस्य अलग-अलग या फिर संयुक्त रूप से लगान की अदायगी कर सकते थे। लगान एकत्र करने के लिए पूरा महाल सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता था। इसमें लगान दर परिवर्तनशील रही। इसे 10 से 20 वर्षों के लिए अपनाया गया। ब्रिटिश भारत के 30% भू क्षेत्र पर यह लागू की गई जिसमें पंजाब, मध्यप्रांत, पश्चिम उत्तर प्रदेश व पश्चिमोत्तर प्रांत तथा राजपूताना शामिल थे।

भारत में भूमि सुधार



A. संस्थागत सुधार

1. **मध्यस्थ-वर्ग की समाप्ति:-** प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में जमींदारी, भागीदारी एवं बेनामी जैसे मध्यस्थ भूमि सम्बन्धी अधिकारों को समाप्त कर दिया गया। ये देश के 40 प्रतिशत क्षेत्र में फैले हुए थे। इन सुधारों से लगभग 2 करोड़ काश्तकार प्रभावित हुए। इनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। मध्यस्थ-वर्ग के अधिकार समाप्त हो जाने से सरकार के स्वामित्व व प्रबन्ध में बहुत-सी कृषि योग्य, बंजर भूमि एवं निजी वन भी आ गये। इनका वितरण भूमिहीन तथा सीमान्त भू-स्वामियों में कर दिया गया।
2. **काश्तकारी सुधार:-** स्वतंत्रता के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान काश्तकारी सुधार के सम्बन्ध में अनेक कानून बनाये गये तथा महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। इन कानूनों का प्रमुख उद्देश्य काश्तकारों को सुरक्षा प्रदान करना, लगान की सीमा निर्धारित करना तथा उसका नियमन तथा काश्तकारों को भूमि का मालिक बनने का अधिकार प्रदान करना था। **नागालैंड, मेघालय और मिजोरम** को छोड़कर सभी राज्यों में काश्तकारी कानून लागू हैं जिससे काश्तकारों को भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध में सुरक्षा प्राप्त हो सके। आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब को छोड़कर सभी राज्यों में लगान की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी गयी है जो सकल उत्पाद के 1/4 से अधिक नहीं होगी। जहां खेती करने वाले काश्तकारों का खेती करने वाली भूमि पर स्वामित्वाधिकार का प्रश्न है आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, बिहार, हरियाणा तथा पंजाब में अब भी स्थिति राष्ट्रीय स्तर के समान नहीं है। काश्तकारी सुधार की दृष्टि से पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, और केरल ने अधिक अच्छी प्रगति की है। पश्चिम बंगाल में **ऑपरेशन बर्गा** (Operation Barga) सरकार द्वारा चलायी जाने वाली योजना है जो 'फसल के बटाईदारों' (Share Croppers) को संरक्षण देने तथा उन्हें विस्थापित करने की योजना है जिससे जमींदार जब चाहें तब उन्हें निकाल नहीं सकें। कर्नाटक में भूमि न्यायाधिकरण तथा केरल में काश्तकार संघ के माध्यम से काश्तकारों को भूमि का स्वामित्व दिलाया गया। काश्तकारी सुधारों का कार्यान्वयन निम्नतः किया जाता है-

(i) **लगान नियमन** - आज से लगभग 25 वर्ष पहले ऐच्छिक काश्तकारों, अन्य काश्तकारों तथा बटाईदारों द्वारा उपज का आधा या इससे अधिक हिस्सा लगान के रूप में जमींदारों व भू-स्वामियों को दिया जाता था। इनको लगान के अतिरिक्त अन्य भुगतान भी काश्तकारों द्वारा किए जाते थे। अब आन्ध्र प्रदेश व हरियाणा को छोड़कर अन्य सभी प्रान्तों में लगान सकल उपज के 1/4 से घटाकर 1/5 कर दिया गया है। अन्य राज्य सरकारों को चाहिये कि वे काश्तकारों से प्राप्त लगान की रसीदे देने को मजबूर करें और काश्तकार रेवेन्यू अधिकारी के पास लगान की राशि जमा करा दें तथा भू-स्वामियों को इसकी सूचना दें। लगान नियमन कानून को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए काश्तकारों को सुरक्षा प्रदान करना तथा स्वामित्व को अधिकार देना अत्यन्त आवश्यक माना गया।

(ii) **भू-धारण की सुरक्षा** - अनेक राज्यों में भू-धारण की सुरक्षा संबंधी कानून बनाकर काश्तकारों की बेदखली रोकी गई है। लेकिन ऐच्छिक परित्याग के बहाने काश्तकारों को बेदखल किया जाता रहा। द्वितीय योजना में ऐच्छिक परित्याग के मामले में रजिस्ट्री कराने का सुझाव दिया गया। लेकिन व्यवहार में यह नियम लागू नहीं हो पाया। बिहार, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, पंजाब एवं हरियाणा में काश्तकारों तथा बटाईदारी की परिस्थितियों में वर्तमान कानून के अन्तर्गत सुरक्षा का अभाव पाया गया।

सभी प्रकार के काश्तकारी में सुरक्षा व स्वामित्व संबंधी कानूनों में निम्नलिखित 3 बातों को ध्यान में रखा गया।

1. यदि काश्तकारों की बेदखली हो तो वह कानूनी प्रक्रिया से हो।
2. यदि काश्तकारों को बेदखल किया जाता है, तो भूमि की एक न्यूनतम मात्रा किसान/ काश्तकार के लिए छोड़ी जानी चाहिए।
3. काश्तकारों को यदि बेदखल किया जाता है तो भू-स्वामी खुद ही कृषि कार्य करेगा अर्थात् खुद काश्त ही एकमात्र आधार होना चाहिए।

भारत में काश्तकारी में स्थायित्व प्रदान करने को लेकर अधिक सफलता देखने को नहीं मिली। इसके निम्नलिखित कारण देखने को मिलते हैं-

- काश्तकारों द्वारा स्वैच्छिक समर्पण की समस्या।
- सरकार के पास पर्याप्त भू-अभिलेखों का अभाव।
- खुद काश्त की परिभाषा का अस्पष्ट होना।

इस प्रकार जब काश्तकार का भूमि पर अधिकार सुनिश्चित नहीं था तब काश्तकारों ने भूमि व कृषि विकास हेतु कोई प्रयास ही नहीं किया।

- (iii) **काश्तकारियों का पुनर्ग्रहण**-सभी राज्यों में काश्तकारों के लिए भू-धारण सुरक्षा प्रदान करने के लिए कानून बनाए गए जिनके प्रभाव से एक करोड़ तेरह लाख काश्तकारों का 1.5 करोड़ एकड़ भूमि पर स्वामित्व के अधिकार प्रदान किए जा चुके हैं। पश्चिमी बंगाल में बटाईदार का पंजीकरण, अधिकार सम्बन्धी रिकॉर्ड में किया गया जिससे उन्हें काश्त की सुरक्षा प्रदान की जा सके। 1982 में असम, गुजरात, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु एवं पश्चिमी बंगाल में 70 लाख पंजीकृत काश्तकार/बटाईदार पाए गए जिनमें से 24.4 लाख अकेले केरल में थे।

पी.एस. प्रभु के अनुसार ग्रामीण भारत में अधिकतर काश्तकारी सुधार सफल नहीं रहे हैं। काश्तकारी प्रथा को नियमित करना बहुत कठिन कार्य है। क्योंकि ग्रामों में भूमिहीन कृषक बहुतायत में हैं। अभी भी मौखिक एवं अनौपचारिक बटाईदार प्रथा प्रचलन में है। इस प्रथा के अन्तर्गत काश्तकारों को भूमि बटाई के लिए दे दी जाती है और इस सम्बन्ध में कोई लिखा-पढ़ी नहीं की जाती है। इसके परिणामस्वरूप काश्तकारी प्रथा रिकॉर्ड में तो दिखाई नहीं देती है परन्तु व्यवहार में आज भी प्रचलित है।

3. **जोतो का सीमा निर्धारण**:- द्वितीय योजना काल में सीमा निर्धारण पर पुनः जोर दिया गया था और इसके लिए सीमा निर्धारण से 'पारिवारिक जोत' का तिगुना निश्चित करने का प्रस्ताव दिया गया। एक औसत परिवार खेती के पुराने उपकरणों की सहायता से जितनी भूमि से साधारणतया खेती कर सकता है उतनी भूमि को 'पारिवारिक जोत' माना गया। सीमा निर्धारण के निम्न दो पहलू हैं-

- (i) **भावी जोतो पर सीमा निर्धारण**- भावी जोत सीमा में यह निश्चित किया जाता है कि भविष्य में एक व्यक्ति अधिक - से - अधिक कितनी भूमि प्राप्त कर सकेगा। अनेक राज्यों में भावी जोतो पर सीमा निर्धारित की गई है।
- (ii) **वर्तमान जोतो पर सीमा निर्धारण**- वर्तमान जोतो पर सीमा लागू करना अधिक मुश्किल कार्य रहा है क्योंकि विभिन्न राज्यों में सीमा निर्धारण कानून पारित किए जा चुके हैं। असम में 6.74 हेक्टेयर, पश्चिमी बंगाल में इसे 7 हेक्टेयर एवं राजस्थान में दो फसलों की सिंचित भूमि पर 10.93 हेक्टेयर तथा सूखी भूमि पर 21.85 हेक्टेयर से 70.82 के बीच सीमा लागू की गई है। ये तथ्य एग्रीकल्चर स्टेटिस्क एट ए ग्लास मार्च 1996 में उद्धरित किए गए थे। सीलिंग से ऊपर की भूमि राज्य सरकार द्वारा अपने अधिकार में लेकर भूमिहीन किसानों व छोटे किसानों को बसाने का कार्यक्रम कार्यान्वित किया गया।

जोतों के उपविभाजन एवं अपखंडन के कारण:-

भारत में जोतों का उपविभाजन एवं अपखंडन विभिन्न कानूनी, सामाजिक, आर्थिक तथा जनानुकीय कारणों से है। इन कारणों ने मिलकर इस तरह काम किया कि कृषि भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गई है। जोतों के उप-विभाजन और अपखंडन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:-

- **निजी संपत्ति अधिकार**:- हर गैर-समाजवादी देश की भांति भारत में सभी लोगों को निजी संपत्ति का अधिकार मिला हुआ है। अतः कृषि भूमि भी जमींदारों और किसानों की निजी संपत्ति है जिसको खरीदा या बेचा जा सकता है और जिसे परस्पर बांट सकना भी संभव है। यदि भूमि पर राज्य का अथवा सामूहिक रूप से गांवों के किसानों का स्वामित्व होता तो भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव के बावजूद भी जोतों का न तो आकार छोटा होता और न ही जोतों का अपखंडन होता।

- **उत्तराधिकार का नियम:-** भारत में उत्तराधिकार के नियम से भी जोतों के उपविभाजन तथा अपखंडन में सहायता मिली है। पिता की मृत्यु के बाद जब भूसंपत्ति का उत्तराधिकारियों में विभाजन होता है तो जोतों के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं। यदि कानून द्वारा छोटी जोतों को उत्तराधिकारियों में बांटने पर प्रतिबंध लगा दिया जाए तो अनार्थिक जोतों की संख्या में वृद्धि को रोका जा सकता है।
- **जनसंख्या में वृद्धि:-** पिछले कुछ दशकों में भूमि जनभार में काफी वृद्धि हुई है। इसके अनेक कारण हैं। प्रथम, पिछले 50-60 वर्षों में जनसंख्या में तेजी के साथ वृद्धि हुई है, परंतु निर्माण उद्योगों और तृतीयक श्रेणी का धीरे-धीरे पतन होता गया है। परिणामस्वरूप गांवों में कृषि भूमि पर जनभार बढ़ा है। दूसरे क्षेत्रों में रोजगार के अभाव में जब किसान परिवार से संबद्ध व्यक्ति ने भूमि के लिए दावा किया तो इससे जोतों के उपविभाजन तथा अपखंडन को प्रोत्साहन मिला।
- **संयुक्त परिवार का विघटन:-** भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन बहुत तेजी से हो रहा है। अतः गांवों में किसान परिवारों में जमीन को बांटने की प्रवृत्ति बढ़ रही है जिससे खेतों का उपविभाजन और अपखंडन बढ़ रहा है।
- **महाजनों और साहूकारों की भूमिका:-** भारतीय ग्रामों में छोटे किसानों को साहूकारों से ही ऋण मिल पाता है जिसे पाने के लिए उसे अपनी भूमि उनके पास गिरवी रखनी होती है। प्रायः किसान ऋण का भूगतान नहीं कर पाते और इस प्रकार जोतों का उपविभाजन और अपखंडन होता है।
- **बंटाई प्रथा:-** एक अनुमान के अनुसार इस समय भी लगभग 40-50 प्रतिशत भूमि किसी-न-किसी प्रकार की पट्टेदारी के अंतर्गत है और इसमें काफी भूमि बंटाई पर है। प्रायः जमींदार अपनी भूमि बंटाई पर किसी एक काश्तकार को न देकर अनेक काश्तकारों को देते हैं। इससे परिणामस्वरूप जोतों के टुकड़े हो जाते हैं।

जोतों के उपविभाजन एवं अपखंडन के दोष:-

जोतों का उपविभाजन एवं अपखंडन अनेक पहलुओं से दोषपूर्ण है। इसमें मुख्य दोष निम्नलिखित हैं:-

- **भूमि का अपव्यय:-** जोत छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाने पर प्रत्येक खेत पर मेढ़ अथवा बाड़ लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इसमें साधनों का अपव्यय तो होता ही है, साथ ही 3-5 प्रतिशत भूमि भी व्यर्थ हो जाती है।
- **कृषि विधियों में सुधार में कठिनाई:-** खेत छोटे होने पर आधुनिक ढंग से खेती कर पाना संभव नहीं होता। किसी भी किसान के लिए अनेक स्थानों पर बिखरे हुए खेतों के लिए निजी साधनों से सिंचाई की व्यवस्था करना आर्थिक दृष्टि से उपयोगी नहीं होता। सिंचाई की नियमित व्यवस्था के अभाव में उर्वरकों का प्रयोग भी नहीं हो सकता। इसलिए नई कृषि नीति की सफलता में जोतों का उपविभाजन तथा अपखंडन बाधक है।
- **भूमि व्यवस्था में कठिनाई:-** उपविभाजित एवं अपखंडित जोतों पर कृषकों के लिए फसलों की देखभाल कर पाना कठिन होता है। दूर-दूर बिखरे खेतों पर जुताई के साधन ले जाने और उत्पादों के यातायात में न केवल उनके समय का अपव्यय होता है, बल्कि उन्हें धन भी अधिक व्यय करना पड़ता है।
- **निम्न उत्पादकता:-** जोतों के टुकड़े बहुत छोटे हो जाने पर प्रति हेक्टेयर पैदावार गिर जाती है। कृषक व्यावसायिक पहलू से खेती न करके परंपरागत ढंग से कृषि करता रहता है। परिणामतः उसका जीवन भी विपन्न रहता है।
- **प्रच्छन्न बेरोजगारी:-** छोटी जोतों पर परिवार के सभी सदस्यों के लिए पर्याप्त काम नहीं होता है। परंतु अन्य रोजगार के अभाव में सभी लोग इन छोटे-छोटे खेतों से बंधे रहते हैं। इस प्रकार गांव में प्रच्छन्न बेरोजगारी स्थाई बन गई है।
- **पारस्परिक विवाद:-** छोटे-छोटे खेत ग्रामीण समाज में आपसी विवाद के कारण हैं। बहुधा गांव में बाड़ एवं मेढ़ झगड़ों का कारण होती है। पर्याप्त देखरेख न होने से दूसरे के खेत में पशु चराना, दूसरों की फसल की चोरी कर लेना इत्यादि भी संभव होता है। इस सबसे ग्रामीण जीवन की शांति भंग होती है।

4. कृषि का पुनर्गठन

कृषि के पुनर्गठन हेतु निम्न सुधारों को क्रियान्वित किया गया-

- (i) **चकबन्दी** - चकबन्दी वह तरीका है जिसके द्वारा किसी किसान के दूर-दूर फैले हुए खेतों को एक साथ व्यवस्थित किया जाता है। ऐसा करने से बड़े पैमाने की खेती के लाभ कृषक को प्राप्त हो जाते हैं, एक स्थान पर तथा बड़े खेतों के होने के कारण देखरेख तथा कृषि के उन्नत तरीकों के प्रयोग की सुविधा बढ़ जाती है।

चकबन्दी से तात्पर्य है भूमि के छोटे-छोटे बिखरे हुए टुकड़ों को एकत्रित करके एक बड़ी कृषि योग्य भूमि के आकार का संगठन करना है। विभिन्न राज्यों में 6.30 करोड़ हेक्टेयर भूमि का चकबन्दी का कार्य पूरा किया जा चुका है। यह देश में कुल कृषि भूमि का एक-तिहाई भाग है। चकबन्दी से एक और काश्तकारों तथा बटाईदारों को हानि हुई है क्योंकि भू-स्वामी बड़े खेतों पर खेती करने लगे हैं लेकिन दूसरी ओर चकबन्दी से कृषक के विभिन्न टुकड़े एक स्थान पर आ जाने से उत्पादन लागत कम हो जाती है एवं खेतों की देखभाल करना सुविधाजनक हो जाता है। चकबन्दी से कार्यशील जोत का आकार बढ़ा है जिसमें आधुनिक कृषि कार्य को प्रोत्साहन मिला है।

चकबन्दी कार्य में कठिनाइयाँ:-

भूमि के अपखंडन की समस्या हल करने के लिए चकबन्दी कार्य जितना आवश्यक है, व्यवहार में उतना ही कठिन है। भारत में जोतों की चकबन्दी के रास्ते में प्रमुख बाधाएं निम्नलिखित हैं-

- कुछ राज्यों में चकबन्दी कानूनों का न होना और कुछ अन्य राज्यों के कानूनों में केवल ऐच्छिक चकबन्दी की व्यवस्था इस कार्य में सबसे प्रधान बाधा है। इससे चकबन्दी के प्रति इन राज्यों की उदासीनता प्रकट होती है।
- भारतीय कृषकों में पैतृक भूमि के प्रति बहुत अधिक मोह है। वे आसानी से उसे छोड़कर दूसरी भूमि के लिए तैयार नहीं होते। यदि वह भूमि अच्छी होती है तो इस आशंका से कि बदले में कहीं उतनी अच्छी भूमि फिर न मिल सकें, वे प्रायः चकबन्दी का विरोध करते हैं।
- चकबन्दी अधिकारियों के पास प्रायः इस कार्य के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान का अभाव होता है। जोतों की सफल चकबन्दी के लिए सभी टुकड़ों का यथोचित सर्वेक्षण, वर्गीकरण और मूल्यांकन किया जाना चाहिए। ऐसा न होने पर भूस्वामियों और कृषकों में भारी असंतोष होगा और वे चकबन्दी का विरोध करेंगे।
- भारत में चकबन्दी अधिकारियों पर अक्सर पक्षपात और भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जाता है। ये आरोप प्रायः सही भी होते हैं। ऐसी स्थिति में ग्रामीणों में चकबन्दी अधिकारियों के प्रति अविश्वास रहता है और वे चकबन्दी कार्य में बाधा डालते हैं।

उपरोक्त समस्याओं के रहते हुए भी जितनी भूमि पर अब तक चकबन्दी हुई है, उससे किसानों को लाभ ही हुआ है। लेकिन चकबन्दी को अपने आप में लक्ष्य मान बैठना भूल होगी। वास्तव में वास्तविक जोत के निर्माण की दिशा में यह पहला कदम है।

- (ii) **भूमि के प्रबन्ध में सुधार**-इसके अन्तर्गत बंजर भूमि का उपयोग, उन्नत पैदावार बीजों का प्रयोग, कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग आदि आते हैं। प्रथम एवं द्वितीय योजना काल में भूमि के प्रबन्ध में सुधार करने पर विशेष ध्यान दिया गया था। यह सुझाव दिया गया था कि जहाँ अनुकूल परिस्थितियाँ मौजूद हैं वहाँ पर सर्वप्रथम भूमि का कुशल प्रबन्ध व प्रयोग किया जाए।
- (iii) **सहकारी खेती**-भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों को मिलाकर संयुक्त खेती करना भारत के लिए वैज्ञानिकों ने बहुत ही लाभप्रद बताया है। सरकार ने पूर्व में ऐच्छिक सहकारी कृषि को प्रोत्साहित करने के लिए वित्तीय सहायता, लगान एवं कर आदि में रियायतें दी थी।

सहकारी खेती के रूप में सुधार प्रमुख रूप से दो उद्देश्यों पर आधारित है- खेतों के छोटे तथा छिटके होने की समस्या का समाधान तथा दूसरा भूमि का समाजीकरण जिससे भूमिहीनों, छोटे किसानों तथा कृषि श्रमिकों के साथ न्यायोचित बर्ताव हो सके। संयुक्त सहकारी खेती के निम्न रूप हो सकते हैं-

- क. **काश्तकार सहकारी खेती**- इसके अन्तर्गत **सहकारी समिति** कृषक सदस्यों की समिति होती हैं, भूमि का स्वामित्व समिति के हाथ में होता है जिसे वह अपने सदस्यों को पट्टे पर दे देती हैं। समिति कृषि में प्रयुक्त सभी आगतों की व्यवस्था करती है। प्रत्येक सदस्य अपनी पट्टे की जमीन के सम्बन्ध में लगान देता है। कृषि उत्पादन पर उसका अधिकार होता है।
- ख. **सामूहिक सहकारी खेती (Collective Cooperative Farming)**- इस प्रकार की खेती में समिति के सदस्य अपनी जमीन समिति को देते हैं जिसे वे वापस नहीं ले सकते। सभी सदस्य सामान्यरूप से कार्य करते हैं। समिति का प्रबन्ध निर्वाचित कौंसिल द्वारा होता है। इसके अन्तर्गत सदस्यों का मजदूरी के अतिरिक्त फार्म के अतिरिक्त में भी हिस्सा प्राप्त होता है।
- ग. **उन्नत सहकारी खेती (Cooperative Better Farming)**- इस प्रणाली के अन्तर्गत किसी गांव के कुछ या सभी सदस्य आपस में मिल जाते हैं, जिससे कृषि के उन्नत तरीकों का लाभ प्राप्त कर सकें। इसके अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य अपनी भूमि का प्रयोग अपने ढंग से कर सकता है और उसका स्वामित्व भी बना रहता है।

स्वतंत्रता पूर्व परिदृश्य में सहकारिता को भूमि-सुधारों के संदर्भ में संस्थागत परिवर्तन के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में पहचाना गया। लेकिन, इस संदर्भ में उस समय सहमति का अभाव दिखाई पड़ा। यही कारण है कि उस समय कांग्रेस ने छोटे किसानों के बीच सहकारी खेती सम्बन्धी अनुभवों के परीक्षण के लिए पॉयलट स्कीम शुरू किए जाने की अनुशंसा की थी। इसके लिए ऐसी सरकारी जमीनों को चुना गया, जो खेती के योग्य तो थी, लेकिन जहाँ पर खेती नहीं की जा सकती थी। 1949 में कुमारप्पा समिति ने पहली बार सहकारिता को लागू करने के लिए दबाव की रणनीति अपनाने का सुझाव दिया। इसके अनुसार 'राज्यों को कृषि के विभिन्न स्तरों के अनुरूप विभिन्न सहकारियों को लागू कराने के अधिकार सौंपे जाने चाहिए।' इस प्रकार जहाँ पारिवारिक किसानों को बाजार में बेचने, कर्जे और अन्य मामलों में बहुमुखी सहकारी संस्था का इस्तेमाल करना पड़ेगा, वहीं सहकारी किसानों को अपना खेत दूसरों के साथ मिलकर जोतना होगा। कुमारप्पा समिति ने यह भी सुझाव दिया कि "कदम-दर-कदम कार्यक्रम, बुद्धिमत्तापूर्ण प्रचार, उदार राजकीय सहायता और विशेष तौर पर प्रशिक्षण किए गए कार्यकर्ताओं द्वारा समझदारी से इसे लागू किए जाने से समिति द्वारा दिए गए सुझावों के अनुरूप सहकारिता के स्वरूप पर किसानों की मनोवैज्ञानिक हिचकिचाहट को दूर करने में मदद मिलेगी।"

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सहकारी खेती के लिए सामुदायिक विकास-कार्यक्रम के प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के जरिए अनुकूल माहौल के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसमें यह भी सुझाव दिया गया कि यदि जमीन के मालिकों और पट्टेदार किसानों का प्रबन्धक ग्राम-भूमि प्रबंधन सहकारिता में शामिल होना चाहे, तो उनका निर्णय समूचे गाँव पर होगा, बशर्ते उनके पास कुल जमीन का आधा मौजूद हो। दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान सहकारी खेती के लिए ठोस आधार तैयार करने को प्राथमिकता दी गई, ताकि अगले 10 वर्षों के दौरान जोत की भूमि के बड़े हिस्से को इसके दायरे में लाया जा सके, लेकिन यही वह दौर था जिसमें चीन में सहकारी खेती की सफलता के अतिशयोक्ति-पूर्ण दावों के कारण दूसरी योजना की रणनीति फीकी लगने लगी। 1950 के दशक के मध्य में योजना-आयोग के साथ-साथ खाद्य एवं कृषि-मंत्रालय द्वारा अलग-अलग प्रतिनिधिमंडल चीन भेजा गया। इस प्रतिनिधिमंडल ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि चीन ने सहकारीकरण के जरिए फसलों के उत्पादन में वृद्धि तथा कृषि की आधारभूत संरचना का प्रसार हासिल किया। इन्हीं की रिपोर्ट के अनुरूप भारत में चीनी-मॉडल को अपनाते हुए संस्थागत परिवर्तनों

के जरिए खाद्यान्न-उत्पादन में वृद्धि को प्राथमिकता दी गई। राष्ट्रीय विकास परिषद ने इसी के अनुरूप दूसरी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों को संशोधित करते हुए अगले पाँच वर्षों में कृषि-उत्पादन में कम-से-कम 25-35 प्रतिशत वृद्धि का प्रस्ताव रखा, लेकिन राज्यों से अपेक्षित सहयोग नहीं मिला। राज्य सहकारीकरण की व्यापक योजना के विरोध में थे। वे महज सहकारी खेती-संबंधी स्वैच्छिक प्रयोग के प्रश्न पर सहमत थे। आगे चलकर 1959 में नागपुर-प्रस्ताव के जरिए सहकारी संयुक्त-खेती का मॉडल प्रस्तुत करते हुए सहकारी संस्थाओं के सशक्तिकरण और अधिकार सम्पन्नता पर जोर दिया गया।

प्रथम चरण के दौरान तीन वर्षों के भीतर सारे देश में सेवा-सहकारिताएँ संगठित की जानी थी। अगर किसान सहमत होते तो इन तीन वर्षों के भीतर ही संयुक्त-खेती की जा सकती थी, अन्यथा दूसरे चरण के दौरान संयुक्त-खेती की दिशा में प्रयत्नशील हुआ जाता। इसके अन्तर्गत मिल-जुलकर जोतने के लिए भूमि को इकट्ठा किया जाता। किसानों के स्वामित्व का अधिकार बरकरार रखा जाता और उन्हें उनकी जमीन के अनुपात में हिस्सा मिल जाता। साथ ही, इसमें काम करने वालों को काम के अनुपात में हिस्सा मिलना अपेक्षित था। कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं के एक गुट ने रूस और चीन की तर्ज पर सहकारीकरण की संकल्पना का जोरदार विरोध किया। परिणामतः फरवरी 1959 में संसद को यह विश्वास दिलाना पड़ा कि सहकारिताओं के निर्माण में किसी भी स्थिति में बल प्रयोग नहीं होगा और न ही संसद इससे संबंधित कोई नया कानून बनाएगी। यही वह दौर है जिसमें चीन में सहकारिता-मॉडल संबंधी प्रयोगों की असलियत सामने आई। फलतः सहकारिता के प्रति आकर्षण कमजोर पड़ने लगा। सहकारी आंदोलन को सफल बनाने के लिए कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किए जाने का सुझाव भी प्रादेशिक समितियों की उपेक्षा का शिकार हुआ। तीसरी योजना तक आते-आते सहकारी खेती को लेकर उदार एवं व्यावहारिक रुख अपनाया गया है।

सहकारिता आंदोलन सीमित सफलताएँ ही अर्जित कर सका। देश के अन्य हिस्सों की तुलना में दक्षिण भारत में यह मॉडल कहीं अधिक सफल रहा, लेकिन निर्धारित लक्ष्यों के विपरीत देश में महज 0.5% जोत-योग्य भूमि पर ही सहकारी खेती संभव हो सकी।

अब प्रश्न यह उठता है कि सहकारी आंदोलन आखिर सफल क्यों नहीं हो सका? इसकी इस असफलता के मूल में नीतिगत अवरोधों के अतिरिक्त राजनीतिक प्रतिबद्धता के अभाव और प्रभावित संकीर्ण स्वार्थ-समूह की राजनीतिक जुगलबंदी बहुत हद तक जिम्मेदार रही।

प्रायोगिक तौर पर राज्यों द्वारा संचालित सहकारी फार्मों में पहले इस्तेमाल न की गई खराब और अनुत्पादक जमीन का प्रयोग किया गया है। समुचित एवं पर्याप्त सुविधाओं के अभाव के साथ-साथ सहकारी के बजाए इनका सरकारी स्वरूप भी इनकी असफलता के लिए कुछ हद तक जिम्मेदार था। इस दौरान सामाजिक और आर्थिक के साथ-साथ राजनीतिक दृष्टि से प्रभावशाली लोगों के द्वारा भी सहकारी संस्था के गठन की दिशा में पहल की गई। लेकिन, इनकी प्रतिबद्धता सहकारी खेती के प्रति न होकर सहकारिता को प्रोत्साहित करने के लिए दी जाने वाली वित्तीय सहायताओं से लाभान्वित होने के प्रति थी। साथ ही, सहकारिता के रूप में खुद को संगठित करते हुए इन्होंने अपनी जमीन को हदबंदी कानून के दायरे में जाने से भी बचाया। इन्होंने सहकारी आंदोलन को परिवारवाद का आधार प्रदान किया। इन दोनों प्रकार की सहकारी संस्थाओं में तुलनात्मक दृष्टि से बेहतर स्थिति सेवा सहकारी संस्थाओं की थी, लेकिन इनसे संबद्ध लोगों के द्वारा भी सहकारिता आंदोलन को उसके मूल मकसद से भटकाने की कोशिश की गई। इन्होंने भी सहकारी आंदोलन को प्रोत्साहित करने के लिए दी जाने वाली सब्सिडी का इस्तेमाल निजी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए किया, जबकि दिए जाने वाले कर्जों का इस्तेमाल गैर-कृषि कार्यों के प्रोत्साहन हेतु किया। सहकारिता आंदोलन को उन राजनीतिक दलों और उसके स्थानीय नेतृत्व का भी

समर्थन नहीं मिल पाया जो सहकारिता के प्रति प्रतिबद्ध थे। परिणामतः सहकारिता आंदोलन जन-आंदोलन का स्वरूप धारण करने में विफल रहा। इन सीमाओं के बावजूद अपने दायरे में रहते हुए इसने, विशेष रूप से ऋण सहकारी संस्थाओं ने, कृषि-क्षेत्र के साथ-साथ ग्रामीण-विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पर, इसके लिए न तो रूस की तरह जबरन समूहीकरण का तरीका अपनाया गया और न ही चीन की तरह भूमि के जबरन अधिग्रहण और कम्युनों में किसानों को जबरन शामिल किए जाने का तरीका अपनाया गया।

संक्षेप में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, भू-स्वामी वर्ग के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक वर्चस्व के साथ-साथ उनकी स्थानीय प्रशासन के साथ साँठ-गाँठ और भूमिहीन काश्तकारों एवं बँटाईदारों के बिखराव ने भूमि-सुधार के प्रयासों को वांछित परिणाम तक पहुँचने नहीं दिया। कहीं-न-कहीं भूमि-संबंधी रिकार्डों की अनुपलब्धता और इसके उचित रख-रखाव न होने के कारण यह प्रक्रिया अवरूद्ध है। तमाम सीमाओं के बावजूद इसने वह जमीन तो तैयार ही कर दी जिसमें 1960 के दशक के मध्य में हरित-क्रांति की ओर बढ़ना संभव हो सका।

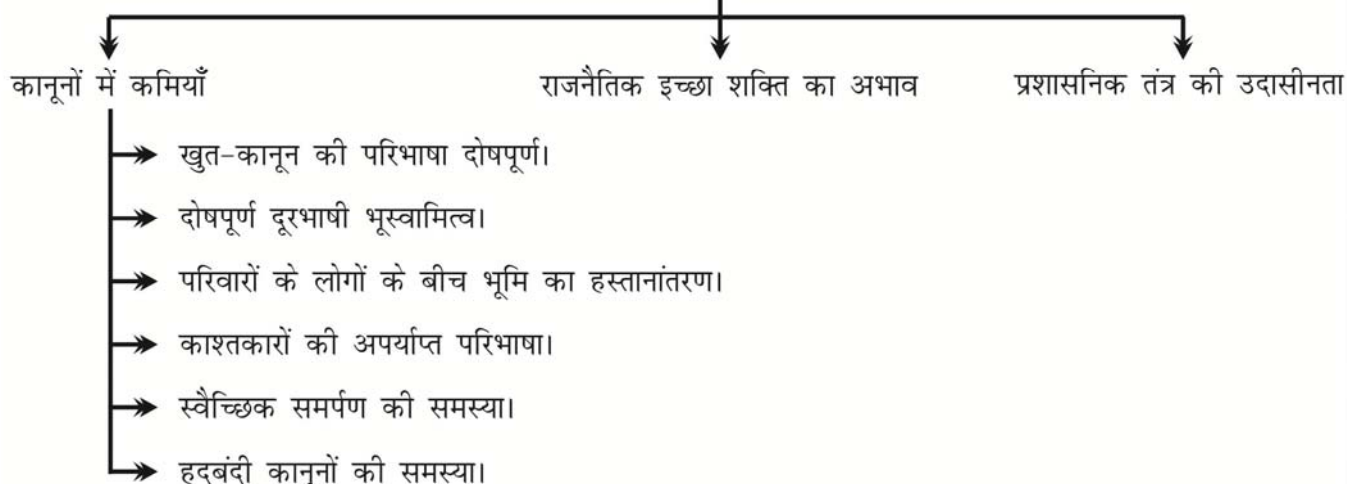
- (iv) **भूमिहीन मजदूरों को बसाना एवं भूदान आन्दोलन** - भूमिहीन श्रमिकों को भूमि पर बसाने के लिए 1951 में भूमि दान में मांगी गई। बाद में यह आन्दोलन ग्रामदान में परिवर्तित हो गया था। 1952 में विनोबा भावे ने बिहार में 'पदयात्रा' करके 8.4 लाख हेक्टेयर भूमि दान में प्राप्त की गई थी जिसमें से 1.3 लाख एकड़ भूमि का आवंटन भी किया गया है।

B. तकनीकी सुधार

- कृषि का आधुनिकीकरण
- सिंचाई प्रणाली का विकास।
- उन्नत किस्म के बीज, उर्वरक, कीटनाशक का उपयोग।
- अच्छे आधुनिक उपकरणों व तकनीकी प्रयोग।
- बेहतर भंडारण एवं परिवहन व्यवस्था।
- जैविक एवं सतत कृषि।
- न्यूनतम समर्थक मूल्य (MSP) एवं किसानों की आय को दोगुना करना।
- भू-स्वामित्व का डिजिटलाइजेशन।

भारत में भूमि सुधारों में कमियों के कारण

भूमि सुधार में कमियाँ



हमने अभी तक भारत में लागू किए गए विभिन्न भूमि सुधारों की चर्चा की है तथा इन सुधारों में कमियां भी रही हैं जिसके निम्न कारण हैं- (1) कानूनों में कमियां, (2) राजनैतिक इच्छा का अभाव (3) प्रशासनिक तंत्र की उदासीनता।

1. कानूनों में कमियाँ

- **खुद-काश्त की परिभाषा-** विभिन्न राज्यों के कानूनों में खुद-काश्त की जो परिभाषा ली गई थी वह दोषपूर्ण थी। कहीं भी इसका अर्थ वह नहीं लिया गया जो होना चाहिए था अर्थात् अपने श्रम से खेती। अधिकतम राज्यों में खुद देख-रेख को खुद-काश्त का हिस्सा मान लिया गया और इसमें भी भू-स्वामी द्वारा स्वयं देख-रेख करने का प्रावधान नहीं था। भू-स्वामी के परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा देख-रेख को काफी मान लिया गया। गांव में भू-स्वामी की मौजूदगी भी अनिवार्य नहीं थी। खुद-काश्त की इस दोषपूर्ण परिभाषा के आधार पर बहुत बड़े पैमाने पर काश्तकारों को भूमि से बेदखल कर दिया गया। यह भूमि सुधारों के उद्देश्यों के बिल्कुल विपरीत था।
- **खुद-काश्त के लिए भूमि अपने पास रखने की सीमा-** न केवल खुद-काश्त की परिभाषा दोषपूर्ण थी अपितु खुद-काश्त के लिए मध्यस्थों को बहुत बड़ी जमीन अपने पास रखने की अनुमति दी गई। इस प्रकार जमींदारों को अपने लिए बड़ी भूमि रखने की छूट मिल गई जो जमींदारी उन्मूलन के उद्देश्य के बिल्कुल विपरीत था। केवल जमींदारों का नाम बदल गया। कानूनों के कार्यान्वयन के बाद ये लोग 'दूरभाषी भू-स्वामी' बन गए हैं।
- **परिवार के लोगों की भूमि का हस्तांतरण-** जोतों की सीमाबन्दी के कानूनों से बचने के लिए जमींदारों ने काफी बड़ी भूमि अपने परिवार के सदस्यों के नाम हस्तांतरित कर दी। इस प्रकार के हस्तांतरण को रोकने के लिए कुछ राज्यों में कुछ समय तक कोई कानून नहीं था। जिन राज्यों में कानून था भी वहां भी खुद-काश्त की 'उदार' परिभाषा के कारण जमींदारों के पास इनमें बचने के लिए बहुत-से रास्ते थे। इससे सीमाबन्दी के कानूनों की प्रभावकारिता में काफी कमी आई। हालांकि दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह सुझाव दिया गया था, कि कपटपूर्ण हस्तांतरण को रोकने के लिए ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि सीमाबन्दी निश्चित करते समय हस्तांतरित भूमि को भू-स्वामी की भूमि में शामिल करके सीमाबन्दी लगाई जाए, तथापि इस दिशा में कोई गंभीर प्रयास नहीं किए गए।
- **काश्तकार की अपर्याप्त परिभाषा-** उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों में बंटाई के आधार पर खेती करने वालों को 'काश्तकार' का दर्जा नहीं दिया गया हालांकि ये काफी बड़ी भूमि पर काश्त करते थे। इसलिए इनके अधिकारों के संरक्षण के लिए काश्त-सुधार से संबंधित कानूनों का प्रयोग नहीं किया जा सका। ऐसा भी अनुमान है कि भारत में बहुत-सी काश्तकारी मौखिक है (अर्थात् उसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है)। इस प्रकार की भूमि पर खेती करने वाले काश्तकार अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए कुछ नहीं कर सकते क्योंकि उनके नाम भूमि रिकार्डों में शामिल ही नहीं हैं।
- **स्वैच्छिक समर्पण की समस्या-** जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, कई बार भू-स्वामियों ने काश्तकारों को 'मजबूर' किया कि वे 'अपनी इच्छा से' भूमि पर से अधिकार छोड़ दें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए काश्तकारों को डराया-धमकाया भी गया और कई बार उनकी पिटाई भी की गई। काश्तकारों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति इतनी कमजोर थी कि वे भू-स्वामियों की शक्ति का किसी भी तरह सामना नहीं कर सकते थे इसलिए उन्होंने 'स्वैच्छा' से भूमि त्याग दी। जैसा कि स्पष्ट है, कोई भी कानून काश्तकारों की मदद नहीं कर सकता अगर वे स्वयं ही अपनी भूमि का त्याग कर दें। काफी समय तक इस प्रकार की व्यवस्था को रोकने के लिए कोई कानून नहीं था। चौथी पंचवर्षीय योजना में पहली बार इस समस्या के समाधान के लिए सुझाव दिया गया। सुझाव यह था कि स्वैच्छिक समर्पण केवल राज्य के पक्ष में ही करने की अनुमति दी जानी चाहिए जिससे भू-स्वामी दोबारा उस भूमि पर कब्जा न जमा सके। परन्तु बहुत कम राज्यों ने चौथी योजना के इस सुझाव को स्वीकार किया।
- **सीमाबन्दी कानूनों में कमियां-** विभिन्न राज्यों तथा एक ही राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में भूमि की उच्चतम सीमा में काफी अधिक अंतर रहे हैं। इससे स्थिति अस्पष्ट रही और अक्सर कानूनों के कार्यान्वयन को लेकर झगड़े होते रहे हैं। सीमाबन्दी कानूनों में एकरूपता लाने के दृष्टिकोण से ही जुलाई 1972 में राज्य मुख्य मंत्रियों की गोष्ठी बुलाई गई थी। परन्तु तब तक काफी क्षति हो चुकी थी और विभिन्न किस्म के हस्तांतरणों व भ्रष्ट तरीकों की वजह से बहुत कम भूमि अतिरिक्त भूमि के रूप में प्राप्त हो सकी। सीमाबन्दी कानूनों से रियायतों व छूटों की सूची भी बहुत लम्बी थी।

2. राजनैतिक इच्छा का अभाव

किसी भी कानून की सफलता के लिए यह जरूरी है कि सरकार में उसे लागू की राजनैतिक इच्छा तथा संकल्प हो। भूमि सुधार जैसे कानूनों की सफलता के लिए तो सरकार में अत्यधिक साहस व कार्यान्वयन की इच्छाशक्ति होनी चाहिए क्योंकि इन कानूनों का लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों के संपत्ति-संबंधों में आमूल परिवर्तन करना होता है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि भू-स्वामी व जमींदार इनका तीव्र विरोध करेंगे। भारत में भूमि सुधारों के क्षेत्र में बहुत कम उपलब्धि इस बात को सिद्ध करती है कि राज्य सरकारें भूमि सुधार कानूनों को लागू करने के लिए बहुत उत्सुक नहीं थी और केवल प्रगतिवादी व समाजवादी मुखौटा पहनकर राजनैतिक लाभ अर्जित करना चाहती थी। वास्तव में वह बड़े किसानों व भू-स्वामियों के दबाव और नियंत्रण में काम करती रही। इस दोतरफा नीति (गरीबों के साथ हमदर्दी और धनी किसानों से गठजोड़) से राजनैतिक लाभ अर्जित करना ही सरकारों का मुख्य उद्देश्य था इसलिए भूमि सुधार महज एक ढकोसला बन कर रह गए। इस संदर्भ में कृषि संबंधों पर टास्क फोर्स की रिपोर्ट से निम्नलिखित उदाहरण महत्वपूर्ण है।

“भूमि सुधारों जैसे प्रगतिवादी कानूनों को बनाने और उनका सही कार्यान्वयन करने के लिए कठोर राजनैतिक निर्णयों और प्रभावी राजनैतिक समर्थन, नियंत्रण तथा दिशा-निर्देश की जरूरत होती है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में जो सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ मौजूद हैं उन्हें देखते हुए भूमि सुधारों के क्षेत्र में तब तक कोई खास प्रगति होने की उम्मीद नहीं है जब तक कि उपयुक्त राजनैतिक इच्छा न हो। यह दुर्भाग्य की बात है कि देश में इस राजनैतिक इच्छा का अभाव है। नीति व कानून बनाने तथा उनका कार्यान्वयन करने में जो बड़ी खाई पाई जाती है यह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्वतंत्रता के बाद सार्वजनिक जीवन के किसी भी क्षेत्र में सिद्धांत व व्यवहार के बीच तथा नीति-घोषणा व उसके कार्यान्वयन के बीच इतनी बड़ी खाई नहीं रही है जितनी कि भूमि-सुधारों के क्षेत्र में पाई जाती है। यदि दृढ़ और सुस्पष्ट राजनैतिक इच्छा होती तो बाकी सभी कठिनाइयों पर विजय पाई जा सकती थी। परंतु यह इस इच्छा के अभाव का ही परिणाम है कि छोटी-मोटी रूकावटें भी भारतीय भूमि-सुधार कानूनों के रास्ते में चट्टानें बनकर खड़ी हो गईं। देश में जिस तरह की राजनैतिक शक्ति-संरचना है उससे कोई और उम्मीद की भी नहीं जा सकती थी।”

‘टास्क फोर्स’ की रिपोर्ट से यह उदाहरण भूमि सुधारों के क्षेत्र में असफलता के मूल कारण को पूरी तरह स्पष्ट करता है। इस उदाहरण से यह बात सिद्ध होती है कि भूमि सुधारों का प्रभावी कार्यान्वयन तभी हो सकता है जब उपर्युक्त राजनैतिक इच्छा हो। इस इच्छा के अभाव में सभी भूमि सुधार कानून महज कागज के टुकड़े हैं।

3. प्रशासनिक तंत्र की उदासीनता

राजनैतिक इच्छा के अभाव के साथ ही प्रशासनिक तंत्र की उदासीनता पर भी विचार करना आवश्यक है। वास्तव में ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्रशासनिक तंत्र की उदासीनता, राजनैतिक इच्छा के अभाव से पैदा होती है। यह बात इस तथ्य से सिद्ध होती है कि जहां कहीं भी उत्साही प्रशासकों ने ईमानदारी के साथ भूमि सुधारों को लागू करने की कोशिश की उनका राजनैतिक नेताओं ने तुरंत तबादला करा दिया। इससे उन प्रशासकों का मनोबल टूट गया और सामान्य प्रशासन भी भूमि सुधारों के प्रति उदासीन हो गया। कई स्थानों पर ऐसा भी देखने में आया है कि प्रशासन के कई महत्वपूर्ण पदाधिकारी या तो स्वयं बड़े भू-स्वामी थे अथवा उनके रिश्तेदार व निकट सहयोगी थे। ऐसे लोगों से भूमि सुधार कानूनों के कठोर कार्यान्वयन की उम्मीद ही नहीं की जा सकती थी। कई स्थानों पर प्रशासनिक तंत्र ने बड़े किसानों से गठजोड़ स्थापित कर लिया, क्योंकि बड़े किसान राजनीतिक पार्टियों को वोट सप्लाई करने वाले ‘बैंक’ हैं। भ्रष्ट राजनीतिज्ञ, प्रशासक और बड़े किसानों की यह जो ‘तिकड़ी’ बनी है इससे इन सबको लाभ हुआ है। प्रशासक ने राजनीतिज्ञ से मिलकर उस भूमि को हथियाना है जिसे अतिरिक्त घोषित किया गया था और जिसका वितरण खेतिहार मजदूरों व ग्रामीण निर्धन वर्ग में होना था। 1973 में पंजाब की स्थिति पर प्रकाशित ‘हरचरण सिंह’ समिति की रिपोर्ट ने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया था कि हरिजनों व अन्य खेतिहार मजदूरों के लिए खाली की गई भूमि को प्रमुख राजनेताओं तथा सरकारी अधिकारियों ने बहुत कम कीमत देकर हड़प लिया। इस प्रकार अतिरिक्त भूमि के वितरण में प्रशासनिक शक्ति का खुला दुरुपयोग हुआ। कानूनों से बचने के लिए यह भूमि अक्सर गरीब काश्तकारों, खेतिहार मजदूरों या हरिजनों के नाम से ली गई परंतु इसके वास्तविक मालिक बड़े-बड़े राजनेता या प्रशासनिक अधिकारी थे। कई बार तो यह भूमि सरकारी एजेंसियों से प्राप्त ऋणों की सहायता से खरीदी गई और ये ऋण बहुत आसान शर्तों पर लिए गए।

इन बातों से सिद्ध हो जाता है कि भूमि सुधारों को कार्यान्वित करने की जिन लोगों को जिम्मेदारी सौंपी गई थी उन्होंने स्वयं ही उसे विध्वंस कर दिया। राजनीतिज्ञ, प्रशासक और बड़े किसान की जिस 'तिकड़ी' की हमने ऊपर चर्चा की है उसके परिणामस्वरूप 'धनी किसान वर्ग' की शक्ति उभर कर सामने आई है। धनी किसान वर्ग की यह शक्ति अब राज्य सरकारों, क्षेत्रीय और स्थानीय प्रशासन पर छा गई और भूमि हथियाने तथा भूमि सुधारों को प्रभावहीन बनाने में सबसे बड़ी रूकावट बन गई।

भू-सुधारों हेतु कुछ सुझाव

- हदबंदी द्वारा प्राप्त भूमि का जल्दी ही वितरण किया जाना चाहिए।
- भू-रिकार्डों का रख-रखाव व सूचीकरण किया जाना चाहिए।
- भू-रिकार्डों को ऑनलाइन किया जाना चाहिए।
- भूमि अधिग्रहण से पारदर्शिता लानी चाहिए।
- कृषि व बहुफसली भूमि का अधिग्रहण नहीं करना चाहिए।
- राजनीतिक व प्रशासनिक इच्छा शक्ति को मजबूत बनाना चाहिए।
- जनजातियों की भूमि को अधिग्रहण नहीं किया जाना चाहिए एवं उनके सांस्कृतिक महत्व को समझना चाहिए।
- भू-अधिग्रहण के लिए कृषकों की सहमति आवश्यक लेनी चाहिए।

निष्कर्ष

भूमि अधिग्रहण संबंधी जरूरतें एक समान नहीं हो सकती हैं क्योंकि सभी राज्य विकास के भिन्न पड़ाव पर हैं और इसीलिए उनकी विकास-संबंधी जरूरतें भी भिन्न-भिन्न हैं। यहाँ तक कि उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्यों में तो एक ही राज्य के भीतर जरूरतें बदल जाती हैं इसे पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बुंदेलखंड से लेकर अवध प्रान्त एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक के अलग-अलग सन्दर्भों में देखा जा सकता है। इसीलिए विकास की दृष्टि से राज्यों के बीच विविधता के मद्देनजर यह विवेक सम्मत होगा कि भूमि-अधिग्रहण कानून को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप अनुकूलित किया जाये और इस सन्दर्भ में राज्य के अनुभवों के मद्देनजर उन्हें अधिक लोचशीलता प्रदान की जाये। लेकिन, ऐसी कोई भी पहल जल्दबाजी में न की जाय और न ही जिस उद्देश्य से संशोधन किये गए, उसे ही अप्रभावी बनायें। अगर ऐसे किसी संशोधन की जरूरत है, तो उसे विस्तृत विचार-विमर्श के बाद ही अंजाम दिया जाये।

विविध अधिनियम

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापना अधिनियम, 2013

- अगस्त, 2013 को लोकसभा द्वारा तथा सितंबर, 2013 को राज्य सभा द्वारा ऐतिहासिक भूमि अधिग्रहण विधेयक पारित किया गया (राज्य सभा द्वारा इसमें कतिपय संशोधन किए जाने के कारण इसे 5 सितंबर को लोकसभा ने पुनः पारित किया) तथा 27 सितंबर, 2013 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के बाद इसने अधिनियम का रूप ले लिया।
- इस अधिनियम ने लगभग 120 वर्ष पुराने ब्रिटिश कालीन 'भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894' का स्थान लिया है।
- संसद की स्थायी समिति, मंत्रिसमूह विपक्षी दलों, राज्यों तथा विभिन्न हितधारकों के सुझावों के आधार पर 2011 में संसद में प्रस्तुत 'भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास एवं पुनर्स्थापना विधेयक' में 150 से अधिक संशोधन किए गए।
- संशोधन विधेयक में भूमि के त्वरित अधिग्रहण के स्थान पर वाजिब मुआवजे और पुनर्वास पर अधिक जोर दिया गया तथा इसका नाम परिवर्तित कर 'भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापना में उचित मुआवजे और पारदर्शिता का अधिकार विधेयक' कर दिया गया।

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापना में उचित मुआवजे और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 के महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं-

- सरकार द्वारा निजी (Private) परियोजनाओं के लिए भूमि का अधिग्रहण किया जा सकता है, परंतु इसके लिए अधिग्रहीत की जाने वाली भूमि के भूस्वामियों में से कम से कम 80 प्रतिशत की सहमति अनिवार्य (Mandatory) होगी। सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) वाली परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण हेतु न्यूनतम 70 प्रतिशत भूस्वामियों की सहमति आवश्यक होगी। इस सहमति में दिए जाने वाले मुआवजे पर सहमति भी शामिल होगी।
- प्रभावित परिवारों को ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि के बाजार मूल्य का 4 गुना तथा शहरी क्षेत्रों में बाजार मूल्य का 2 गुना तक मुआवजा दिये जाने का प्रावधान किया गया है।
- अनुसूचित क्षेत्रों में कोई भी भूमि संबंधित ग्राम सभाओं की स्वीकृति के बिना अधिग्रहीत नहीं की जा सकेगी।
- इसमें प्रत्येक प्रभावित परिवार को एक मकान उपलब्ध कराए जाने (मकान न लेने का विकल्प चुनने पर एकमुश्त वित्तीय सहायता), एकमुश्त 5 लाख रु. या एक नौकरी (यदि उपलब्ध है), एक साल के लिए मासिक 3000 रु. का भत्ता तथा 1.25 लाख रु. के मिश्रित भत्ते (50,000 रु. का परिवहन भत्ता, 50,000 रु. का पुनर्स्थापना भत्ता 25,000 रु. की एकमुश्त सहायता प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। 5 लाख रु. के एकमुश्त अनुदान के स्थान पर वैकल्पिक रूप से प्रति परिवार प्रतिमाह 2,000 रुपये का भुगतान 20 वर्षों तक किए जाने का भी प्रावधान है। जिसे महंगाई दर से जोड़ा जाएगा।
- अधिग्रहीत भूमि पर भूमि आजीविका के लिए निर्भर व्यक्तियों को भी मुआवजा दिया जाएगा।
- यदि अधिग्रहीत भूमि का विक्रय बढ़े हुए मूल्य पर किसी तृतीय पक्ष को किया जाता है, तो लाभ को मूल भूस्वामियों के साथ बांटा जाएगा।
- यदि किसान की भूमि शहरीकरण के लिए अधिग्रहीत की जा रही है तो उसका 20 प्रतिशत भाग आरक्षित रखा जाएगा और किसानों को उनसे ली गई भूमि के अनुपात में अधिग्रहण मूल्य के बराबर कीमत पर उस विकसित भाग में भूमि लेने की पेशकश की जाएगी।

नोट- 4 सितंबर, 2013 को राज्य द्वारा इस विधेयक में संशोधन के माध्यम से सिंचाई परियोजनाओं के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। इसके तहत सिंचाई परियोजनाओं हेतु भूमि के अधिग्रहण के संदर्भ में समयावधि में छूट होगी तथा ऐसी परियोजनाओं में भूस्वामी को मात्र भूमि का मुआवजा (या वैकल्पिक जमीन) प्राप्त होगा और उनके संबंध में पुनर्वास या पुनर्स्थापना का प्रावधान लागू नहीं होगा। साथ ही ऐसी परियोजनाओं के संदर्भ में सामाजिक प्रभाव आकलन का प्रावधान भी लागू नहीं होगा।

अधिनियम के अन्य सकारात्मक तत्व

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापना में उचित मुआवजे और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम, 2013 में उक्त प्रावधानों के अलावा निम्न बातों का भी ध्यान रखा गया है-

- प्रभावित परिवारों की परिभाषा।
- भूमि की परिभाषा।
- खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना।
- पुनर्वास और पुनर्स्थापना प्राप्ति।
- एससी और एसटी के लिए विशेष प्रावधान।
- पुनर्वास और पुनर्स्थापना के अंतर्गत बुनियादी सेवा संबंधी सुविधाएं।
- भूमि की निजी खरीद में पुनर्वास और पुनर्स्थापना।
- अंधाधुंध भू-अधिग्रहण से सुरक्षा।
- पारदर्शिता और दंड हेतु प्रावधान।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है, कि अधिग्रहण के संबंध में सम्यक् नीति नहीं बनायी गयी तो कई प्रकार के खतरे आसन्न हैं-उदाहरणस्वरूप

- कृषि भूमि के अधिक अधिग्रहण से खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो सकता है।
- राजनीति प्रेरित विरोध से राज्य का औद्योगीकरण प्रभावित हो सकता है।
- किसानों में असंतोष से कानून और व्यवस्था की समस्या उत्पन्न हो सकती है।
- विस्थापितों की बड़ी संख्या नयी सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को जन्म दे सकती है।

अतः हम कह सकते हैं, कि मात्र संशोधन विधेयक पेश कर दिए जाने या किसी राज्य द्वारा की गई अधिग्रहण नीति पेश कर दिये जाने से समस्या का समाधान होने वाला नहीं है। अब तक परिवर्तन किसान विरोधी और उद्योगपतियों के हित सापेक्ष ही साबित हुए हैं। अतः इन सब पर पुनर्विचार अनिवार्य है, पुनर्विचार के पश्चात एक समग्र एवं नये केन्द्रीय कानून के अधिनियम की जरूरत है, जो देश में कृषि एवं उद्योग क्षेत्रों के संतुलित विकास को दिशा प्रदान कर सके।

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापना में उचित मुआवजा और

पारदर्शिता का अधिकार (संशोधन) बिल, 2015

The Right to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition, Rehabilitation and Restoration (Amendment) Bill, 2015 (LARR)

- ग्रामीण विकास को लोकसभा में भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापना में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार (संशोधन) बिल, 2015 पेश किया। बिल भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार एक्ट, 2013 (एलएआरआर एक्ट, 2013) को संशोधित करता है।
- बिल भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार (संशोधन) अध्यादेश, 2014 के स्थान पर लाया गया है।
- LARR एक्ट, 2013 उस प्रक्रिया को रेखांकित करता है जिसका अनुपालन सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि अधिग्रहण के दौरान किया जाता है। बिल द्वारा किए गए प्रमुख बदलाव निम्नलिखित हैं:
- एलएआरआर एक्ट, 2013 के समानुरूप अन्य कानूनों के प्रावधान: एलएआरआर एक्ट, 2013 ने अन्य 13 कानूनों (जैसे राष्ट्रीय राजमार्ग एक्ट, 1956 और रेलवे एक्ट, 1989) को अपने दायरे से बाहर रखा था। फिर भी, एलएआरआर एक्ट, 2013 के तहत यह अपेक्षा की गई थी कि एक्ट के लागू होने के एक साल के अंदर (एक जनवरी, 2015 तक) उन 13 कानूनों के मुआवजे, पुनर्वास और पुनर्स्थापन से जुड़े प्रावधानों को एक अधिसूचना (नोटिफिकेशन) के जरिये एक्ट के समानुरूप लाया जाए। बिल इन 13 कानूनों के मुआवजे, पुनर्वास और पुनर्स्थापन से जुड़े प्रावधानों को एलएआरआर एक्ट, 2013 के समानुरूप लाता है।
- प्रयुक्त भूमि की पांच श्रेणियों को विशिष्ट प्रावधानों से छूट बिल भूमि के इस्तेमाल की पांच श्रेणियों को निर्धारित करता है जिन पर सरकार का स्वामित्व होता है। ये श्रेणियां हैं: (i) रक्षा, (ii) ग्रामीण अवसंरचना (इंफ्रास्ट्रक्चर), (iii) सस्ते आवास, (iv) औद्योगिक परिक्षेत्र और (v) सार्वजनिक निजी भागीदारी (पीपीपी) सहित अवसंरचना परियोजना।
- एलएआरआर एक्ट, 2013 के तहत निजी परियोजनाओं के लिए 80% भूस्वामियों और पीपीपी परियोजनाओं के लिए 70% भूस्वामियों की सहमति हासिल करने की अपेक्षा की जाती है। बिल एक्ट के इस प्रावधान से उपरिलिखित पांच श्रेणियों की मुक्त करता है।
- इसके अतिरिक्त, बिल कहता है कि सरकार इन पांच श्रेणियों में आने वाली परियोजनाओं को एक अधिसूचना के जरिये निम्नलिखित प्रावधानों से छूट दे सकती है:
 - (i) एलएआरआर एक्ट, 2013 के तहत अपेक्षा की जाती है कि प्रभावित परिवारों को चिन्हित करने के लिए सामाजिक समाघात निर्धारण (सोशल इंपैक्ट असेसमेंट) किया जाएगा और भूमि अधिग्रहण के समय सामाजिक प्रभाव की गणना की जाएगी।
 - (ii) एलएआरआर एक्ट, 2013 सिंचित बहुफसल वाली भूमि और दूसरी कृषि भूमि के अधिग्रहण पर कुछ प्रतिबंध लगाता है। उदाहरण के लिए, सिंचित बहुफसल वाली भूमि को उपयुक्त सरकार द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक अधिग्रहित नहीं किया जा सकता।
- इस्तेमाल न होने वाली भूमि की वापसी:** एलएआरआर एक्ट, 2013 में कहा गया है कि अगर एक्ट के तहत अधिग्रहित की गई भूमि का इस्तेमाल पांच साल तक नहीं किया जाता तो वह भूमि मूल भूस्वामी को या भूमि बैंक में चली जाएगी। बिल कहता है कि इस्तेमाल न होने वाली भूमि को वापस करने की अवधि- (i) पांच वर्ष या (ii) परियोजना शुरू करने के समय निर्दिष्ट कोई भी समयावधि होगी। इनमें से जो अवधि बाद की होगी, वही इस स्थिति में लागू होगी।
- पूर्व प्रभाव के विनियोग के लिए समयावधि:** एलएआरआर एक्ट, 2013 कहता है कि जिन मामलों में भूमि अधिग्रहण एक्ट, 1894 के तहत निर्णय दिए गए हैं, उन मामलों में वही एक्ट लागू रहेगा। परन्तु, अगर यह निर्णय एलएआरआर एक्ट, 2013 के लागू होने के पांच वर्ष या उससे पहले दिए गए हैं और भूमि का भौतिक कब्जा नहीं लिया गया है और मुआवजा नहीं दिया गया है, तो एलएआरआर एक्ट, 2013 लागू होगा।

- बिल कहता है कि इस समयावधि की गणना करने में, उस समयावधि को नहीं गिना जाएगा जिसमें अधिग्रहण की कार्यवाही निम्नलिखित की वजह से रूक गई हो: (i) अदालत के स्टे-ऑर्डर, (ii) कब्जा लेने के ट्रिब्यूनल के निर्णय में निर्दिष्ट समयावधि, (iii) उस अवधि जिसमें कब्जा ले लिया गया हो लेकिन मुआवजा अदालत या किसी खाते में जमा हो।
- अन्य परिवर्तन: एलएआरआर एक्ट, 2013 ने निजी अस्पतालों और निजी शिक्षण संस्थानों को अपने दायरे से बाहर रखा था। इस बिल ने इस प्रतिबंध को हटा दिया है।
- एलएआरआर एक्ट, 2013 निजी कंपनियों के लिए भूमि अधिग्रहण पर लागू होता था, बिल ने इसे बदलकर 'निजी इकाई' के लिए अधिग्रहण कर दिया है। एक निजी सरकारी इकाई से अलग होती है और इसमें प्रोपराइटरशिप, पार्टनरशिप, कंपनी, निगम, अलाभकारी संगठन या कानून के तहत आने वाली कोई भी इकाई शामिल हो सकती है।
- एलएआरआर एक्ट, 2013 कहता है कि अगर सरकारी विभाग द्वारा कोई अपराध होता है, तो विभाग के प्रमुख को अपराधी माना जाएगा, जब तक वह यह नहीं दिखाता कि अपराध, बिना उसकी जानकारी के किया गया है या उसने अपराध होने से रोकने के लिए पूरा प्रयास किया। बिल इस प्रावधान में परिवर्तन करता है और कहता है कि अगर अपराध किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा किया गया है तो सरकार की पूर्व अनुमति के बिना उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

डिजिटल इंडिया लैंड रिकॉर्ड मॉडर्नाइजेशन प्रोग्राम

भूमि सुधार (LR) विभाग दो केन्द्र प्रायोजित योजनाओं-भूमि अभिलेखों का कंप्यूटरीकरण तथा राजस्व प्रशासन का सुदृढीकरण एवं भूमि अभिलेखों का अद्यतनीकरण (Strengthening of revenue Administration and updating of Land Records) को कार्यान्वित कर रहा था। बाद में वर्ष 2008 में मंत्रिमंडल ने संशोधित योजना डिजिटल इंडिया लैंड रिकॉर्ड मॉडर्नाइजेशन प्रोग्राम या राष्ट्रीय भूमि अभिलेख आधुनिकीकरण कार्यक्रम में इन योजनाओं के विलय का अनुमोदन किया।

- DILRMP के तीन मुख्य अवयव हैं।
- भूमि अभिलेख का कंप्यूटरीकरण।
- सर्वेक्षण/पुनः सर्वेक्षण।
- पंजीकरण का कंप्यूटरीकरण।

भूमि पट्टा अधिनियम - 2016

कृषि भूमि पट्टा अधिनियम की आवश्यकता

- स्वतंत्रता के पश्चात् भूमि सुधार का उद्देश्य दक्षता एवं समानता के उच्च स्तर के साथ कृषि अर्थव्यवस्था में तब्दील करना परंतु यह केवल आंशिक रूप से हासिल किया गया है।
- विशेषतः 1960 और 1970 के दशक में लागू प्रतिबंधात्मक भूमि पट्टा कानूनों (Restrictive Tenancy laws) ने ग्रामीण गैर-कृषि विकास में कृषि विकास, समानता और निवेश को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है-
 - (क) अधिकतर राज्य सरकारों ने कृषि भूमि, पट्टे पर दी जाती है, उस पर या तो कानूनी प्रतिबंध लगाया है या उस पर सीमाएं आरोपित की हैं।
 - (ख) प्रतिबंधात्मक भूमि पट्टा कानूनों (Restrictive Land Tenancy Laws) ने काश्तकार को अनौपचारिक, असुरक्षित और अयोग्य माना है।
 - (ग) अनौपचारिक काश्तकारों के पास विधिक मान्यता/शुचिता और संस्थागत ऋणों (Credit), बीमा और अन्य सहायता सेवाएं की पहुंच न होने के कारण, ये अत्यन्त असुरक्षित एवं अयोग्य हैं।
- भूमि पट्टे पर प्रतिबंधों ने ऐसे भू-स्वामियों के व्यावसायिक गतिशीलता को कम कर दिया है जिसे कृषि के बाहर रोजगार करने की इच्छा और सक्षम होने के पश्चात् भी जमीन खोने के भय के कारण उन्हें कृषि से जुड़े रहना होता है।

यह नीति आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति (Expert Committee) की पृष्ठभूमि के विरुद्ध है-

- विभिन्न राज्यों में मौजूदा कृषि काशतकारी कानूनों (Agricultural Tenancy Law) की समीक्षा करने से है।
- अति आवश्यक कृषि दक्षता, समानता, व्यवसायिक विविधीकरण और त्वरित ग्रामीण परिवर्तन के लिए भूमि पट्टे को वैध बनाने और उदार बनाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उचित संशोधन का सुझाव देना।
- संदर्भों की शर्तों के अनुसार, विशेषज्ञ समिति ने किसानों के संगठनों और नागरिक समाज समूहों समेत राज्यों और अन्य हितधारकों के परामर्श से एक मॉडल कृषि भूमि पट्टा कानून पर कार्य किया है।

अधिनियम की मुख्य विशेषताएं

- नीति आयोग के अंतर्गत गठित डॉ. टी. हक की अध्यक्षता में भूमि लीजिंग पर विशेषज्ञ समिति ने 31 मार्च, 2016 को कृषि भूमि लीजिंग अधिनियम, 2016 का मॉडल प्रस्तुत किया। मुख्य विशेषताएं हैं-
- 1. कृषि दक्षता, समानता और गरीबी में कमी को बढ़ावा देने के लिए भूमि पट्टे को वैध बनाना।
- 2. इससे कृषि की उत्पादकता में सुधार और लोगों की व्यावसायिक गतिशीलता और तेजी से ग्रामीण परिवर्तन में भी मदद मिलेगी।
- 3. भूमि मालिकों के लिए जमीन स्वामित्व की पूरी सुरक्षा सुनिश्चित करने और सहमत लीज अवधि के लिए किरायेदारों की कार्यकाल की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सभी क्षेत्रों में भूमि पट्टे को वैध बनाना।
- 4. विभिन्न राज्यों के भूमि कानूनों में भूमि के प्रतिकूल कब्जे के खंड को हटा देना चाहिए क्योंकि यह भूमि पट्टा बाजार के मुक्त कामकाज में हस्तक्षेप करता है।
- 5. कुछ राज्यों के कानून में काशतकारी के समाप्त होने के बाद भी काशतकार के साथ जमीन के किसी भी न्यूनतम क्षेत्र की आवश्यकता के बिना सहमति पट्टे की अवधि के बाद भूमि की स्वचालित बहाली की अनुमति होनी चाहिए।
- 6. सभी काशतकारों को यह सुविधा होनी चाहिए कि अपेक्षित उत्पादन के विपरीत भी बीमा बैंक क्रेडिट तक पहुंच संभव हो।
- 7. भूमि सुधार में निवेश करने के लिए काशतकारों को प्रोत्साहित करें और उन्हें काशतकारी समाप्त होने के समय निवेश के अप्रयुक्त मूल्य को वापस पाने के लिए भी पात्र बनाएं।

विवाद समाधान

1. पट्टेदार किसान और भूमि मालिक - पट्टादाता तीसरे पक्ष के मध्यस्थता ग्राम पंचायत या ग्राम सभा का उपयोग करके इस अधिनियम के तहत पट्टे समझौते से उत्पन्न होने वाले किसी भी विवाद को सुलझाने के लिए हर संभव प्रयास करेगा।
2. यदि विवाद खंड (1) में उल्लिखित तंत्र के माध्यम से सुलझाया नहीं गया है, तो कोई भी पक्ष सक्षम प्राधिकारी, यानी तहसीलदार या बराबर रैंक राजस्व अधिकारी के सामने एक याचिका दायर कर सकता है जो राज्य में, विवाद का निर्णय लेता है, चार सप्ताह की अवधि के भीतर निस्तारण किया जा सकेगा।
3. इस अधिनियम के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित अंतरिम आदेश के अलावा प्रत्येक आदेश के लिए एक अपील कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट डिवीजनल आयुक्त को राज्य द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है।
4. राज्य सरकार एक विशेष भूमि न्यायाधिकरण का गठन करेगी, जिसका नेतृत्व एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय या जिला अदालत के न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा, जो कि इस अधिनियम के तहत विवादों का निर्णय करने का अंतिम अधिकारी होगा।